पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, अमृतचन्द्राचार्य कृत, १३ वीं गाथा चलती है। क्या चलता है? आत्मा, विकाररूप '**परिणममानस्य**' यहाँ से पूरा मूल सिद्धान्त है। आत्मा, विकाररूप परिणमता हुआ अपने चैतन्यस्वरूप विकार रागादि, उन्हें निमित्तमात्र पौद्गलिक कर्म का उदय कहा जाता है। आत्मा स्वयं है वह अपने में, अपने कारण से, स्वयं विकाररूप— राग-द्वेषरूप होता है। वह तो स्वयं ही परिणमता है, परन्तु निमित्त चीज़ कौन है? — इसकी अब व्याख्या चलती है। निमित्त, पूर्व का पुद्गलकर्म का उदय है। कारण कि विकार अपने स्वभाव के लक्ष्य से नहीं होता। आत्मा में दोष होता है, वह कहीं निर्दोष गुण के लक्ष्य से नहीं होता। इसलिए दोष का निमित्त कौन है—यह बात सिद्ध करते हैं।

अब आप देखो! **जिस-जिस प्रकार द्रव्यकर्म उदयावस्था को प्राप्त होता है....** वहाँ आया है। **उसी-उसी प्रकार आत्मा विभावभावरूप परिणमन करता है।** पहला तो निमित्तपना सिद्ध करना है, हों! '**परिणममानस्य**' तो पहले से सिद्ध किया। परिणमता हुआ, विकाररूप परिणमता हुआ; उसे निमित्त कौन है?-यह बात है। तब कहते हैं, निमित्त ऐसा है कि उसके प्रमाण में अर्थात् निमित्त के लक्ष्य से जीव, विकाररूप होवे तो उस पुद्गल ऐसी कौन सी शक्ति है? अर्थात् निमित्त में, हों! यहाँ तो निमित्त सिद्ध करना है न? परिणमित होनेवाला जीव, विकाररूप, दोषरूप होनेवाला आत्मा है, परन्तु उसमें निमित्त कैसा? जिसमें वह शक्ति है कि निमित्तरूप हो—ऐसी शक्ति कैसी है? समझ में

www.vitragvani.com

आया ? उपादानरूप से तो अपना दोष अपने से होता है, यह तो उसकी शक्ति परन्तु कर्म का उदय, उसमें निमित्तपने की कैसी शक्ति है कि इसे परिणमित होने में वही निमित्त हो ?

उत्तर : जिस प्रकार किसी मनुष्य के सिर पर मन्त्र पढ़ी हुई धूल डाली हो.... मन्त्रित धूल **तो उस धूल के निमित्त से....** उस धूल के निमित्त द्वारा, हों! **वह पुरुष स्वयं को भूलकर नाना प्रकार की विपरीत चेष्टायें करता है।** वह निमित्त है; उपादान इसका (स्वयं का) है। समझ में आया ? वह पुरुष मन्त्रित धूल के निमित्त द्वारा अपने को भूलकर अनेक प्रकार की चेष्टा करता है, उसमें वह मन्त्रित धूल उसकी निमित्त कहलाती है। **मन्त्र के निमित्त से उस धूल में ऐसी शक्ति हो जाती है....** अब धूल का निमित्तपना सिद्ध करते हैं। **मन्त्र के निमित्त से उस धूल में ऐसी शक्ति हो जाती है कि वह बुद्धिमान पुरुष को विपरीत परिणमन करवा देती है।** ऐसे निमित्त होने की शक्ति है। बुद्धिमान मनुष्य को भी, परिणमने में स्वयं परिणमता है विकाररूप, गहलरूप; उसमें वह निमित्त की शक्ति उसे परिणमाती है-ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

उत्तर : हाँ, यह परिणमन तो पहले सिद्ध रखा है न! '**परिणममानस्य**' यहाँ से तो शुरु किया है। उसे सिद्ध करते हैं या इसके पाठ से उल्टा सिद्ध करते हैं ? परिणमन में विकाररूप परिणमते उसे निमित्त यह है; निमित्त की तो उसमें शक्ति है। ऐसी गलरूप परिणमते या विपरीत चेष्टारूप होते, उसे धूल निमित्त है, जो मन्त्रित धूल है, वह निमित्त है, इतना यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ?

परिणमन करवा देती है। इसकी व्याख्या बाद में की, नीचे स्पष्टीकरण करना पड़ा। ***प्रत्येक द्रव्य स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल और भाव से है,....*** यह सिद्धान्त है। प्रत्येक पदार्थ अपना द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई; काल अर्थात् वर्तमान दशा; भाव अर्थात् त्रिकाल शक्ति। प्रत्येक पदार्थ अपने वर्तमान काल की परिणति पर्याय से है; पर की परिणति / वर्तमान के पर के काल से नहीं। कहो, समझ में आया ? तथापि जीव की (शक्ति) उस प्रकार से कोई किसी को परिणमन नहीं करा सकती।

परद्रव्यादि का उसमें सदा अभाव ही है, इसलिए कोई किसी को परिणमन

www.vitragvani.com

नहीं करवा सकता,.... परद्रव्यादि का उसमें सदा ही अभाव ही है, ***उस प्रकार के परिणमन करने की योग्यता के काल में बाह्य में किस सामग्री को निमित्त बनाने में आया था, उसका ज्ञान करवाने के लिए असद्भूत व्यवहारनय से....*** कर्ता-व्यवहारकर्ता सब असत् कर्ता है वास्तव में। यह अपने प्रवचनसार में आ गया। ***कर्ता कहा जाता है।*** असद्भूतनय से परचीज दूसरे को करे—ऐसा कहने में झूठे ज्ञान से, असद्भूतनय से कहने में आता है। ***व्यवहार कथन की रीति ऐसी ही है, इस प्रकार जानना चाहिए।*** व्यवहारकथन का प्रकार ही ऐसा है।

उसी प्रकार इस आत्मा के प्रदेशों में.... आत्मा अपना शुद्धस्वरूप है, उसके असंख्य प्रदेश हैं। **रागादि के निमित्त से....** किस निमित्त से होता है, यह अब सिद्ध करते हैं। कि **रागादि के निमित्त से बँधे हुए पुद्गलों के निमित्त से....** ऐसी दो बात गुलाँट खाती है। पूर्व में जो कर्म बँधा हुआ था, उसमें राग-द्वेष का निमित्त था। जीव के राग-द्वेष का निमित्त था। इससे निमित्त से बँधा हुआ वह। वह ही फिर नये राग-द्वेष का निमित्त होता है। समझ में आया? कलश-टीका में आया था न? कलश-टीका में आया था।

यह आत्मा असंख्य प्रदेशी चौड़ा और अनन्त गुणभाव सम्पन्न (पदार्थ है)। इसे वर्तमान दशा में पुण्य-पाप के—राग-द्वेष के भाव हों, उन्हें निमित्त कौन है? कि जिस निमित्त में पूर्व में राग-द्वेष का निमित्त था, उससे बँधा हुआ कर्म; वह कर्म, राग-द्वेष के निमित्तवाला जो यहाँ कर्म था, वह कर्म इसे राग-द्वेष में निमित्त होता है। समझ में आया? **रागादि के निमित्त से बँधे हुए पुद्गलों के निमित्त से यह आत्मा स्वयं को भूलकर नाना प्रकार के विपरीत भावरूप परिणमन करता है।** जीव अपने स्वरूप को भूलकर, अपने ही उपादान अर्थात् वर्तमान दशा में विकार को करता है।

इसके विभावभावों के निमित्त से, इसके विभावभावों के निमित्त से पुद्गल में ऐसी शक्ति हो जाती है... देखो! पूर्व में राग-द्वेष का विभावभाव था न? उसमें कर्म में ऐसी शक्ति हुई। **पुद्गल में ऐसी शक्ति हो जाती है कि वह चैतन्य पुरुष को विपरीत परिणमन करवा देता है।** विपरीत परिणमन करनेवाले को परिणमाता है—

www.vitragvani.com

ऐसा कहने में आता है। इन्होंने बहुत बढ़ाया (डाला) है न? हिम्मतभाई ने पंचास्तिकाय में अन्दर लेखन दूसरा किया, नीचे वापस बचाव किया। भाई! सिद्धान्त तो पहले निश्चित रखकर सर्वत्र सिद्धान्त हो सकता है या नहीं?

एक वर्तमान द्रव्य की वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था में पर-अवस्था का निमित्तपना होने पर भी, उस पर की अवस्था का इसमें अभाव है। कहो, समझे इसमें? देखो! परिणमाता है (-ऐसा लिखा है)। इसका अर्थ करना होवे तो करे फिर सब इसमें से। परन्तु यहाँ पाठ क्या है? गाथा का भाव है, उसे सिद्ध करना है या उससे उलटा सिद्ध करना है? पाठ तो यह है — '**परिणममानसय चितश्चिदात्मकैः स्वयमपि स्वकैर्भावैः**' देखो न! कितने शब्द पड़े हैं! विकाररूप जीव होने पर होनेवाले को उन चैतन्यस्वरूप रागादिभाव को '**स्वयमपि स्वकैर्भावैः**' स्वयं अपने भाव से परिणमते को **भवति** निमित्तमात्र पुद्गल -कर्म, बस! उसे पूर्व का कर्म निमित्तमात्र होता है। कहो, समझ में आया इसमें? पाठ में बात होवे, उसे खोलना है या उससे कुछ विपरीत बात करना है? तब तो पाठ का वह अर्थ नहीं हुआ। पाठ तो यह है। विकाररूप जीव जब होता है, तब स्व से अपने चैतन्यरूप विकार के भाव। '**स्वकैर्भावैः**' अपने भावरूप परिणमते हुए उसे **भवति** निमित्त, उसे उस काल में निमित्त होता है। उसमें काल भेद कहाँ था? समझ में आया? '**पौद्गलिकं कर्म तस्यापि**' लो! उसे पुद्गलकर्म निमित्त होता है। कहो, समझ में आया इसमें? दूसरा दोष कराता नहीं—ऐसा कहते हैं। कराता नहीं—ऐसा कहते हैं। यदि दोष कराता होवे तो अब उपदेश कहेंगे कि कर्म के निमित्त से हुआ विकार तूने किया हुआ है; उसे तू तेरे स्वभाव में मान तो विपरीत मान्यता है, मिथ्यात्व है। यह तो अब यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

आत्मा में कर्म के निमित्त से होते, अशुद्ध उपादान अपना स्वतः परिणमन से; परन्तु वह मलिनभाव है। उसे सहित तू माने तो सहित मानता है तू; वहाँ कर्म का उदय मनवाता है—ऐसा नहीं आया वहाँ। समझ में आया? १४ वीं गाथा है न? देखो न! विकाररूप जीव परिणमता है, तब पूर्व का कर्म निमित्त है, इतना। अब उस निमित्त से होते उपाधिभाव को आत्मा अपने स्वभाव के साथ एकरूप मानता है, उसका नाम मिथ्यात्व और संसार है।

www.vitragvani.com

अब जब एकरूप मानना, वह भी यदि निमित्त के आधीन होवे, तब तो फिर तू एकरूप मानता है, वह तेरी भूल है, यह कहने को रहता नहीं। समझ में आया? समझ में आता है?

देखो! **इस भाँति भावकर्म से द्रव्यकर्म और द्रव्यकर्म से भावकर्म होता है,....** ऐसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध को जाहिर / प्रसिद्ध किया। **इसे ही संसार कहते हैं।** कहो, समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप आत्मा है। वह अपने को भूलकर, अपने में विकारभाव को करता है, उसमें पूर्व का कर्म निमित्तमात्र उपस्थित संयोगमात्र चीज़ गिनने में आती है। उस विकार का जो परिणमन होता है, वह स्वयं ने ही किया हुआ है, परन्तु तदुपरान्त अब वह विकार का परिणाम स्वयं अपने त्रिकाल स्वभाव के साथ मानता है, वही मिथ्यात्वभाव और संसार का मूलकारण है, यह अब यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? '**परिणममानस्य**' तो वहाँ सिद्ध कर दिया।

www.vitragvani.com

गाथा - १४

आगे इस संसार का मूलकारण बताते हैं जिसका नाश होने पर पुरुषार्थसिद्धि का उपाय बनता है-

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्।।१४।।

कर्मजन्य भावों से चेतन इस प्रकार संयुक्त न हो।
अज्ञानी को एक भासते निश्चय यह भवबीज अहो।।१४।।

अन्वयार्थ : (एवं) इस प्रकार (अयं) यह आत्मा (कर्मकृतैः) कर्मकृत (भावैः) रागादि अथवा शरीरादि भावों से (असमाहितोऽपि) संयुक्त न होने पर भी (बालिशानां) अज्ञानी जीवों को (युक्तः इव) संयुक्त जैसा (प्रतिभाति) प्रतिभासित होता है और (सः प्रतिभासः) वह प्रतिभास ही (खलु) निश्चय से (भवबीजं) संसार का बीजरूप है।

टीका : 'स एवं अयं कर्मकृतैर्भावैः असमाहितः अपि बालिशानां युक्तः इव प्रतिभाति' - इस प्रकार यह आत्मा कर्म द्वारा किये हुए नाना प्रकार के भावों से संयुक्त नहीं है तो भी अज्ञानी जीवों को अपने अज्ञान से आत्मा कर्मजनित भावों से संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है।

भावार्थ : पहले ऐसा कहा गया है कि पुद्गल कर्म का कारणभूत रागादिभाव है और रागादिभाव का कारण पुद्गलकर्म है, इसलिए यह आत्मा निजस्वभावभाव की अपेक्षा कर्मजनित नाना प्रकार के भावों से भिन्न ही चैतन्यमात्र वस्तु है।

जिस प्रकार लाल फूल के निमित्त से स्फटिक लाल रंगरूप परिणमन करता है परन्तु वह लाल रंग स्फटिक का निजभाव नहीं है। स्फटिक तो स्वच्छतारूप अपने श्वेतवर्ण से ही विराजमान है। लाल रंग है वह तो स्वरूप में प्रवेश किये बिना ऊपर-ऊपर ही झलक मात्र दिखाई पड़ता है। वहाँ रत्न का पारखी जौहरी तो ऐसे ही जानता

www.vitragvani.com

है परन्तु अपारखी (अपरीक्षक) पुरुष को सत्यरूप (वास्तव में) वह स्फटिकमणि ही रक्तमणिवत् लाल रंग के स्वरूप प्रतिभासित होती है। उसी प्रकार कर्म निमित्त से आत्मा रागादिरूप परिणमन करता है, वह रागादि आत्मा का निजभाव नहीं है, आत्मा तो अपने स्वच्छतारूप चैतन्यगुण में विराजमान है। रागादि है वह तो स्वरूप में प्रवेश किये बिना ऊपर ही ऊपर झलक मात्र दिखाई देता है। वहाँ ज्ञानी स्वरूप का परीक्षक तो ऐसे ही जानता है। किन्तु अपरीक्षक (अपारखी) पुरुषों को सत्यरूप अर्थात् वास्तव में वह आत्मा पुद्गल कर्मवत् रागादिस्वरूप ही प्रतिभासित होता है।

प्रश्न : आपने ही तो रागादिभावों को जीवकृत कहा था अब यहाँ उन्हें कर्मकृत कैसे कहते हो?

उत्तर : रागादिभाव चेतनारूप हैं अत: उनका कर्ता जीव ही है परन्तु यहाँ श्रद्धान करवाने के निमित्त मूलभूत जीव के शुद्धस्वभाव की अपेक्षा से रागादिभाव कर्म के निमित्त से होते हैं इसिलए कर्मकृत कहा है।

जैसे किसी मनुष्य को भूत (–व्यंतर) लगा हो तो वह मनुष्य उस भूत के निमित्त से नाना प्रकार की विपरीत चेष्टायें करता है। उन चेष्टाओं का कर्ता तो वह मनुष्य ही है परन्तु वह चेष्टायें मनुष्य का निजभाव नहीं है इसलिए उन्हें भूतकृत कहते हैं। उसी प्रकार यह जीव कर्म के निमत्त से नाना प्रकार विपरीत भावोंरूप परिणमन करता है, उन भावों का कर्ता तो जीव ही है परन्तु वह जीव के निजभाव नहीं हैं अत: उन भावों को कर्मकृत कहते हैं। अथवा कर्मकृत जो नाना प्रकार की पर्याय, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, कर्म, नोकर्म, देव–नारक–मनुष्य–तिर्यंचशरीर, संहनन, संस्थानादि भेद अथवा पुत्र, मित्र, मकान, धन, धान्यादि भेद – इन समस्त से शुद्धात्मा प्रत्यक्ष भिन्न ही है। जिस प्रकार कोई मनुष्य अज्ञानी गुरु के कहने से एकान्त झोपड़ी में बैठकर भैंस का ध्यान करने लगा, अपने को भैंसे के समान विशाल शरीरवाला चिन्तवन करने लगा और आकाश जितना ऊँचा सींगवाला अपने को मानकर सोचने लगा कि मैं इस झोंपड़ी से बाहर कैसे निकलूँगा। यदि वह अपने को भैंसा न माने तो मनुष्य स्वरूप तो स्वयं है ही। उसी प्रकार यह जीव मोह के निमित्त से अपने को वर्णादिक स्वरूप मानकर देवादि पर्यायों में अपनत्व मानता है। यदि न माने तो अमूर्तिक शुद्धात्मा तो आप बना ही बैठा है।

www.vitragvani.com

इस प्रकार यह आत्मा कर्मजनित रागादिकभाव अथवा वर्णादिकभाव से सदाकाल भिन्न है। तदुक्तम् – 'वर्णाद्या वा राग मोहादयो वा। भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः*।।' तो भी अज्ञानी जीवों को आत्मा कर्मजनित भावों से संयुक्त प्रतिभासित होता है। 'खलु सः प्रतिभासः भवबीजम्।' – निश्चय से यह प्रतिभास ही संसार का बीजभूत है।

भावार्थ – जैसे समस्म वृक्षों का मूलभूत बीज है, वैसे ही अनन्त संसार का मूलकारण कर्मजनित भावों को अपना मानना है। इस प्रकार अशुद्धता का कारण बताया।।१४।।

गाथा १४ पर प्रवचन

आगे इस संसार का मूलकारण बताते हैं– १४ वीं गाथा।

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्।।१४।।

सहित तुझे भासित होता है। निमित्त इसे ऐसा भासित कराता है? भास कराता है? **'प्रतिभाति'** तुझे भासित होता है-ऐसा कहते हैं। तुझे भासित होता है कि कार्य के निमित्त के संग से हुआ मलिनभाव तुझे तेरे स्वभाव के साथ एक भासित होता है, यह तेरी भूल है, यह मिथ्यात्वभाव है, यह संसारभाव है, भटकने का भाव है। कहो, समझ में आया इसमें? **'प्रतिभाति बालिशानां'** किसे? **'बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्'** अज्ञानियों को इस अज्ञानपने के कारण; कर्म के कारण—ऐसा नहीं कहा यहाँ। ऐसे विकारी भाव, कर्म के ही कारण से होते हों तो विकारीभाव अपना मानना, वह भी कर्म के ही कारण मानता है—ऐसा होगा। समझ में आया? क्या समझ में आता है या नहीं?

आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। उसमें विकारीभाव होते हैं, वे कर्म के कारण ही होते होवे, तब तो विकारीभाव को तू स्वयं स्वभाव के साथ मानता है, यह कहने का रहता नहीं। वह भी कर्म के कारण ही मानता है—ऐसा होगा। कहो, छोटा भाई! निमित्त उड़ जाता है,

* यह पुरुष (आत्मा) शुद्धनय से तो वर्णादि, रागादि, अथवा मोहादि सभी भावों से भिन्न है।

www.vitragvani.com

इसमें वास्तव में तो। इसमें निमित्त स्थापते हैं। निमित्त को स्थापकर, उसका उपाधिभाव स्थापित करना है—ऐसा स्थापित करना है। उपाधिभाव में निमित्त होता है; स्वभावभाव में निमित्त नहीं होता—यह सिद्ध करते हैं। क्या कहा?

भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु है। तथापि कहते हैं कि उसमें उपाधिभाव है, वह निमित्त द्वारा हुआ; स्वभाव द्वारा नहीं—ऐसा कहकर, उस विकार को उपाधिभाव स्थापित करते हैं; और उस उपाधिभाव को, स्वभाव के साथ एक (रूप) है—ऐसा अज्ञानियों को भासित होता है-ऐसा कहा है। कर्म के कारण एक (रूप) भासित होता है—ऐसा कहा है? समझ में आया इसमें? अर्थ देखो!

'एवं' इस प्रकार 'अयं' यह आत्मा कर्मकृत.... देखो! निमित्त से हुए उपाधिभाव। पहले तो जीवकृत कहा था। कहा था या नहीं? '**जीवकृतं**' १२ वीं गाथा का पहला शब्द, '**जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य**' आहा...! शास्त्र का अर्थ करने में भी विपरीतता। विपरीत पड़ा है तो उसे वापस विपरीत निकलना है। कर्मों के किये हुए का अर्थ क्या करना है? कि निमित्त के द्वारा हुए तेरे उपाधिभाव, वह वास्तविक आत्मा का स्वरूप नहीं है। समझ में आया? **रागादि अथवा शरीरादि भावों से....** देखो! दोनों लिये। '**वर्णाद्यारागाद्या**' ऐसा सिद्ध करेंगे। है न श्लोक? '**वर्णाद्यारागाद्या**' (समयसार कलश, ३७) यह श्लोक डालेंगे, दोनों डाले हैं।

यह आत्मा, कर्मों के निमित्त से हुआ आत्मा में पुण्य-पाप, काम-क्रोध आदि के उपाधिभाव (हों) और निमित्त से हुआ यह शरीरादि बाह्य वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श का प्राप्त होना। दो (बातें की हैं)। आत्मा तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। उसके त्रिकाली शुद्धस्वभाव में वह विकार नहीं है। वह विकार ऊपर-ऊपर एक क्षण में हुई उपाधि, निमित्त के आधीन हुई, आश्रय से हुई तुझमें उपाधि है। की है इसने परन्तु निमित्त के आधीन की है, स्वभाव के आधीन हुई नहीं। समझ में आया? वह निमित्त के आधीन हुई उपाधि (को) अकेले स्वभाव के साथ समाहित माने... देखो! **संयुक्त न होने पर भी....** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप आनन्द की मूर्ति आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ऐसे आत्मा को उस उपाधिभाववाला-सहित स्वीकार करना, वह संसार और मिथ्यात्व है, बीज है—भटकने का बीज है। समझ में आया?

www.vitragvani.com

यह भी क्या कहा? **संयुक्त न होने पर भी....** (संयुक्त) कौन मानता है? **अज्ञानी जीवों को संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है....** वहाँ ऐसा नहीं कहा कि भाई! कर्म के निमित्त से इसे संयुक्त / सहित प्रतिभासित होता है। दर्शनमोह के निमित्त से-निमित्त द्वारा इसे आत्मा के स्वभाव के साथ में उपाधिभाव सहित है—ऐसा मिथ्यात्व के / दर्शनमोह के कारण भासित होता है-ऐसा नहीं कहा।

मुमुक्षु : यह इसे समझ लेना चाहिए।

उत्तर : यही कहते हैं, समझ लेना चाहिए कि तुझसे हुआ उपाधिभाव, उसमें निमित्त था। उस उपाधिभाव को स्वभाव के साथ मानता है, वह भी तू मानता है; कर्म कहीं मनवाता नहीं। कर्म से वह (उपाधिभाव) हुआ नहीं और उसे सहित माने, वह कर्म मनवाता नहीं। समझ में आया? अटपटा-अटपटा (लगे परन्तु) बहुत सरस बात ली है।

अज्ञानी जीवों को संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है.... भगवान शुद्ध स्फटिक चैतन्य जैसा; उसमें कहते हैं कि यह उपाधिभाव, स्वभाव के आधार से नहीं हुए, निमित्त के लक्ष्य से हुई उपाधि; हुई तुझमें '**परिणममानस्य**'। वे विकार के भाव, निमित्त के आधीन हुए, स्वभाव के आधीन नहीं (हुए); इससे वहाँ निमित्त-आधीन है—ऐसा कहने में आया है; और उस निमित्त के आधीन हुए मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि भाव, उपाधिभाव, क्षणिकभाव, ऊपर तैरता भाव, क्षणिक समयमात्र हुआ भाव, उसे त्रिकाली शुद्ध भगवान आत्मा के साथ / सहित मानता है, वहीं मिथ्यात्वभाव-संसारभाव है। समझ में आया? है या नहीं इसमें भी? देखो न! यह पुस्तक तो सामने रही है।

वह प्रतिभास ही निश्चय से संसार का बीजरूप है। गज़ब सिद्धान्त कहा! समझ में आता है? चैतन्य भगवान ज्ञानानन्द चैतन्य ज्योति, वह तो शुद्ध आनन्द की मूर्ति आत्मा है। उसमें, परिणमता वह आत्मा, विकार की उपाधिरूप जो राग-द्वेष, पुण्य-पापरूप होवे, उसमें निमित्त के आधीन से हुआ भाव, वह उपाधि है। किया है स्वयं ने; निमित्त पर है। यहाँ स्वभाव-आधीन नहीं, इसलिए निमित्त पर—ऐसा सिद्ध करना है; और निमित्त के आधीन क्षणिक, कृत्रिम (विकार), त्रिकाल स्वभाव में नहीं। ऐसे उत्पन्न हुए ऐसे विकारीभाव को स्वभाव के साथ में सहित है—संयुक्त है, जुड़ा हुआ है, एक है—ऐसी

www.vitragvani.com

मान्यता को मिथ्यात्व कहते हैं। वह मिथ्यात्व, संसार का बीज है। कहो, शोभालालजी! समझ में आता है या नहीं? कितनी बात सिद्ध करते हैं!

भगवान आत्मा तो शुद्ध चैतन्य की मूर्ति, परमानन्दस्वरूप आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा परमानन्द शुद्ध ज्ञायकस्वरूप चैतन्य, उसकी वर्तमान दशा में उपाधि के भाव मलिन राग-द्वेष, पुण्य-पाप (होते हैं); वे स्वभाव में नहीं है, स्वभाव के आश्रय से हुए नहीं हैं, स्वभाव का लक्ष्य करके बने नहीं हैं; निमित्त का लक्ष्य करके बने हुए उपाधिभाव हैं; इसलिए निमित्त द्वारा हुए—ऐसा कहने में आया। ऐसे जो विकारीभाव पुण्य और पाप, काम और क्रोध विकारी शुभाशुभभाव, वे उपाधि हैं, क्षणिक हैं, निमित्त-आधीन हुए हैं, स्वभाव में नहीं हैं। उन्हें जो कोई अपने शुद्धस्वरूप में, विकारी कृत्रिम को शुद्धस्वभाव के साथ में सहित माने, उसका नाम ही संसार का बीज और मिथ्यात्व है। आहाहा...! कहो, मांगीरामजी!

आगंतुक भाव। घर में किसी का दागीना ले आवे पाँच हजार का... दागीना को क्या कहते हैं? जेवर। घर की पूँजी में गिने तो? आभूषण, घर की पूँजी, पूँजी, पूँजी... पूँजी के साथ माने कि यह भी मेरा, दस हजार मेरे हैं। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, आत्मा की पूँजी तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति आनन्द की खान है। उसमें कर्म के निमित्त के आधीन हुई उपाधि क्षणिक आगंतुक विकारीभाव है। जैसे मेहमान आया हो, वह वापस चले जानेवाला है, वह कोई वहाँ रहनेवाला नहीं है।

इसी प्रकार यह विकारीभाव, पुण्य-पाप के मलिन भाव, ये निमित्त के आधीन हुए आगंतुक (भाव), स्वभाव में नहीं है; पर्याय में उत्पन्न हुए-ऐसे भाव हैं। ऐसे विकारीभाव, कृत्रिम पुण्य-पाप के कृत्रिम आगंतुक (भाव) स्वभाव की खान में नहीं; पर्याय में निमित्त के आधीन हुई उपाधि है। उस उपाधिभाव को त्रिकाल निरुपाधि स्वभाव के साथ खतावे (माने) कि ये भी मेरे हैं; इसका अर्थ-आस्रवतत्त्व मेरे स्वभाव का है (—ऐसा मानता है।) पहले अजीवतत्त्व कहा था, अजीव के आधीन हुआ; ऐसी उपाधि का मिथ्यात्व, राग-द्वेषभाव, उसे शुद्ध चैतन्यतत्त्व-ज्ञायकतत्त्व है, उसके साथ में आस्रवतत्त्व सहित है—ऐसा स्वीकार करे, वही मिथ्यात्व और संसार है—ऐसा कहते हैं। तीनों तत्त्वों की भिन्नता कर डाली। यह ज्ञायक, आस्रव और अजीव। समझ में आया? आहाहा!

www.vitragvani.com

जीवतत्त्व अर्थात् ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्य। अजीव—पुद्गलतत्त्व, यह लेना है न यहाँ? कर्म का उदय है, वह अजीवतत्त्व है। जीव अपने अन्दर ज्ञान और आनन्द से भरपूर आत्मा भगवान पूर्णानन्द का नाथ ही है; परन्तु उस स्वभाव के लक्ष्य को अनादि से छोड़ा है। ऐसी स्वभाव स्थिति होने पर भी, उस स्वभाव का लक्ष्य छोड़ा है; इसलिए इसका लक्ष्य अजीव की पर्याय—अजीव—पर गया है। जिस पर गया, उसे यहाँ निमित्त कहने में आया है; परन्तु गया है स्वयं के कारण। समझ में आया?

पुण्य और पाप, काम और क्रोध विकारी भाव में पर के लक्ष्य में लक्ष्य गया है, इससे उत्पन्न हुआ है। अब कहते हैं—अजीव तो भिन्न है—ऐसा सिद्ध किया; उससे उत्पन्न अपनी उपाधि, उसे आधीन सिद्ध किया। अब यह आस्रव, यह अजीव जो चीज़ है, वह तो आत्मा में नहीं, वह (अजीव) निमित्त, परन्तु निमित्त के आधीन हुआ उपाधिभाव भी त्रिकाल स्वभाव में नहीं। ऐसे त्रिकाल स्वभाव में आस्रवसहितवाला आत्मा है—ऐसा मानना, वही मिथ्यात्व और संसार का बीज है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'भवबीजं' अर्थात् राग-द्वेषभाव, पुण्य-पाप के भाव, स्वभाव नहीं है; स्वभाव तो मोक्ष का बीज है। भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव, शुद्धस्वभाव, वह तो पूर्णानन्द की दशा हो, उसका यह आत्मा बीज है। ऐसा आत्मा ज्ञायकस्वभाव शुद्ध कन्द, जिसमें से केवलज्ञान और परम आनन्द प्रगटे, उसका वह बीज है। ऐसे आत्मस्वभाव में निमित्त से उत्पन्न हुए उपाधिभाव को मिलाना (कि) 'इन सहित हूँ'—इसका अर्थ कि उनमें एकत्वबुद्धि करना, विकार के साथ एकत्वबुद्धि करना, वह ही मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? आहा...! कहो, समझ में आता है या नहीं? मांगीरामजी! आहा!

अभी ऐसे ती तत्त्व (लेते हैं)। एक जीवतत्त्व, जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप। एक पुद्गल तत्त्व। अभी सम्बन्ध में लेना है न? उसे लेना है न? अजीवतत्त्व। कारण कि जीव के स्वभाव के लक्ष्य से राग-द्वेष उपाधि नहीं होती। राग-द्वेष के भाव तो निमित्त के लक्ष्य से होते हैं; इसलिए अजीवतत्त्व सिद्ध किया। अब उपाधि सिद्ध करके, उसके आधीन हुई इसमें, अपने में। अब यह आस्रवतत्त्व जो उपाधिभाव है, उसे निरुपाधि स्वभाव के साथ एक मानना तो जीवतत्त्व को आस्रवतत्त्व के साथ एक मानना (हुआ), ये दो, एक हो

www.vitragvani.com

सकते नहीं। इन्हें एक मानना, इसका नाम मिथ्यात्व है। समझ में आया? अद्भुत कथन पद्धति गजब की है! कैसी बात की है, देखो न! १३ और १४ (गाथा)।

'**परिणममानस्य चितश्चिदात्मकैः स्वयमपि स्वकैर्भावैः**' इतने तो शब्द रखे हैं। '**भवति हि निमित्तमात्रं**' वहाँ '**भवति**' एक निमित्त, वह आस्रव। निमित्तमात्र एक पुद्गल है। अजीव को सिद्ध किया। इसके विकार को निमित्त भी एक चीज़ है—यह सिद्ध किया। अब तो कहते हैं भाई! उस निमित्त के आधीन हुआ मैल, उसे निर्मलानन्द भगवान के साथ संयुक्त / सहित स्वीकार कर लेने का नाम ही संसार में भटकने का मिथ्यात्व बीज है। समझ में आया? इसका अर्थ कि एक तत्त्व के साथ दूसरे तत्त्व का एकत्व मानने का नाम मिथ्यात्व है—ऐसा कहा, लो! समझ में आया या नहीं? देखो! यह १४ वीं गाथा बहुत ऊँची है, हों!

टीका : 'स एवं अयं कर्मकृतैर्भावैः असमाहितः अपि बालिशानां युक्तः इति प्रतिभाति'– समझ में आया? फिर एक टुकड़ा रहा, वह बाद में अन्त में कहेंगे। एक टुकड़ा रहा न? एक टुकड़ा बाकी रहा थोड़ा-सा। कौन? '**स खलु स प्रतिभास भवबीजम्**' यह टुकड़ा बाकी रहा, बाद में कहेंगे। यह अन्त में कहेंगे। इतने टुकड़े का पहले अर्थ करते हैं। फिर अन्त में कहेंगे। '**स खलु स प्रतिभास भवबीजम्**' यह बाद में कहेंगे, अन्तिम कहेंगे। '**स खलु स प्रतिभास भवबीजम्**' आहा! गज़ब बात! क्या कहते हैं? भाई! समझ में आता है इसमें?

इस प्रकार यह आत्मा कर्म द्वारा किये हुए.... अर्थात् निमित्त द्वारा उपाधिभाव हुआ, स्वभाव द्वारा नहीं हुआ, ऐसा। कर्म द्वारा—अजीव के आश्रय से, लक्ष्य से, आधीन होकर—उसके द्वारा किया—ऐसा कहने में आया, क्योंकि स्वभाव द्वारा नहीं हुआ। पुण्य-पाप का भाव, मलिनभाव, राग-द्वेष का भाव; स्वभाव द्वारा नहीं हुआ, इससे कर्म द्वारा किया हुआ—ऐसा कहने में आया है। **नाना प्रकार के भावों से....** अनेक प्रकार के भाव से। पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध विकल्पों का असंख्य प्रकार का जाल। मिथ्यात्व आदि सब, हों! ऐसे **भावों से संयुक्त नहीं है....** भगवान चैतन्य शुद्ध आनन्दकन्द; ऐसे उपाधिभाव से सहित नहीं है। स्वभाव में उन रहित है। आहाहा! समझ में आया?

www.vitragvani.com

शुभ-अशुभभाव या पर में सुख है—ऐसी मिथ्याभ्रान्ति... समझ में आया? या पाप का भाव, यह सब उपाधिभाव है। यह उपाधिभाव, त्रिकाल चैतन्यस्वभाव में सहित नहीं। त्रिकाल शुद्धस्वभाव, विकारसहित नहीं। ऐसे त्रिकाल शुद्ध भगवान आत्मद्रव्य को, विकारभावसहित नहीं उसे; सहित मानना, यह संसार में भटकने का मिथ्यात्व बीज है। कहो, रतिभाई! आहाहा! सम्प्रदाय को बेचारे को सुनने को मिलता नहीं। वह तो करो, यह करो... यह करो... मिच्छामि दुक्कडम... यह जीवया वोरविया है। देखो! क्या जीवया वोरविया। कि जिसने चैतन्य ज्ञायक अनन्त गुण सम्पन्न भाव प्राण स्वरूप प्रभु, उसे इन पुण्य-पाप के, राग-द्वेष के मिथ्यात्वभावसहित मानने का नाम जीविया वोरविया है। उसने आत्मा के जीवन का नाश किया और मिथ्यात्वभाव उत्पन्न किया। नाश किया अर्थात्? पूर्ण ज्ञायक चैतन्य शुद्धस्वरूप का आदर नहीं किया, इसलिए वह है ही नहीं और यह विकारीभाववाला, वह ही मैं हूँ—(इसका नाम नाश किया) समझ में आया?

चैतन्य भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति, प्रकाश का पुंज और स्वच्छता का सागर—ऐसा जो स्वरूप (है), उसे ऐसे निमित्त के आधीन हुए, निमित्त द्वारा हुए, पर द्वारा हुए, दुश्मन द्वारा (हुए उपाधिभाव है।) नहीं कहते कि भाई! तुझे संग हुआ इसका। उसके द्वारा तुझे दोष लगा। किया है तो इसने। इसी प्रकार कर्म के संग द्वारा हुए 'परसंग एव' उपाधिभाव, मलिनभाव ऐसे संयुक्त मलिनभाव से निर्मलानन्द प्रभु सहित नहीं है, रहित है। आहाहा! समझ में आया?

पूरा चैतन्य शुद्ध आनन्द का गोला, ध्रुव सागर समुद्र, स्वभाव का सागर ऐसा भगवान, एक क्षण की कृत्रिम उपाधि के मैलसहित नहीं है। आहाहा! एकत्व-विभक्त। पहले एकत्व-विभक्त कहा था न? वहाँ दूसरे प्रकार से है। यहाँ इस प्रकार से कहा है। भगवान आत्मा, मलिन परिणाम से विभक्त है, एकत्व नहीं। आहाहा! ऐसा चैतन्यस्वभाव भगवान, उसे विकारसहित (मानना); विभक्त है, उसे एकत्व मानना, इसका नाम ही मिथ्यादर्शन और मिथ्यात्व है। इस संसार में भटकने का यह कारण है। कहो, जगदीशभाई! कहो, यह समझ में आता है या नहीं? कहो, समझ में आया? वाह! गज़ब बात भाई! कितनी शैली रखी है! गज़ब शक्ति! उसका पीछे काम कितना करता है! क्षयोपशमज्ञान कितना काम करता है!

www.vitragvani.com

कहते हैं, भाई! देखो! कर्म, संसार का बीज है—ऐसा नहीं कहा। कर्म, संसार का बीज है—ऐसा नहीं कहा। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है न? भाई! कर्म का निदान बतायेंगे... परन्तु वह तो हेतु-निमित्त कौन है—ऐसा कहा है। संसार का बीज कर्म नहीं, तथा संसार का बीज स्वभाव नहीं। आत्मस्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति, वह संसार का बीज नहीं; वह तो मोक्ष का बीज है। कर्म, संसार का बीज नहीं, वह तो जड़ है। संसार पर्याय तो विकारी है, उसका बीज जड़ नहीं होता। संसार / चौरासी में अवतार का-भटकने का बीज, निर्मलानन्दनाथ को मलिनतासहित मानना, वह संसार में भटकने का बीज है। आहाहा! यह भी... क्या कहते हैं? देखो!

तो भी अज्ञानी को.... भाषा ऐसी है, देखो! '**बालिशानां**' है न? '**बालिशानां**' अज्ञानी को **अपने अज्ञान से....** भाषा ऐसी है। '**बालिशानां प्रतिभासः**' है न? अज्ञानी को अज्ञान के कारण भासित होता है—ऐसा फिर सिद्ध करना है। **अज्ञानी को अपने अज्ञान से....** वहाँ यदि ऐसा कहना हो, तब तो फिर वहाँ ऐसा ही कहे कि यह भी वहाँ दर्शनमोह के कारण वहाँ ऐसा भास होता है। निमित्त से दोष होता हो तो यहाँ भी ऐसा कहना चाहिए कि अज्ञानी को निमित्त के कारण से—दर्शनमोह के कारण से ऐसा अशुद्धता के मलिनभाव को शुद्धता में खताता (मानता) है, सहित मानता है, उसकी मान्यता में कारण दर्शनमोह है। समझ में आया?

उपाय बतलाना है न? उल्टे पुरुषार्थ से करे, उसे सुल्टे पुरुषार्थ से टाल सके, तब पुरुषार्थसिद्धि का उपाय कहलाये न? इसके अधिकार में टालना न हो, करना अधिकार में न हो तो टालने का अधिकार में नहीं रहा। विकार का करना इसके अधिकार में न हो तो पर का अधिकार (हुआ तो) टालने का पर के अधिकार से हुआ। समझ में आया? भारी कठिन बात! कितनी सरलता में बात रखी है, लो!

'**युक्तः इव प्रतिभाति बालिशानां**' यह '**प्रतिभासः स खलु भवबीजम्**' यह आगे रखेंगे, अन्त में। अज्ञान से **अपने अज्ञान से....** अर्थात्? शुद्धस्वरूप ज्ञानानन्द की ओर लक्ष्य नहीं करता, पूर्णानन्द स्वभाव पर नहीं देखता; उसका अभाव करके विकार के परिणाम को अज्ञानी अपने अज्ञान के कारण अपने में भास करता है। ये मेरे

www.vitragvani.com

स्वरूप में है—ऐसा भास करता है। मेरे स्वरूप में है—ऐसा भासित होता है। बस! यही भास मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? **यह आत्मा, कर्म द्वारा किये हुए नाना प्रकार के भावों से संयुक्त...** सहित, युक्त नहीं, **तो भी अज्ञानी जीवों को अपने....** शुद्धस्वरूप के अभान के कारण, मिथ्याभाव से **भावों से संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है।** समझ में आया?

भावार्थ : पहले ऐसा कहा गया है कि पुद्गल कर्म का कारणभूत रागादिभाव है.... ऐसा कहा था न पहली गाथाओं में? नवीन कर्म बँधते हैं, उन्हें आत्मा के राग-द्वेष मलिनभाव, वह निमित्त है। **रागादिभाव का कारण पुद्गलकर्म है,....** पारस्परिक। जीव विकार करे, उसमें पुद्गलकर्म का निमित्त है और जो कर्म बँधते हैं, उनमें जीव के राग-द्वेष आदि भाव, वे निमित्त हैं। पारस्परिक। **इसलिए यह आत्मा निजस्वभावभाव की अपेक्षा....** देखो! इसलिए यह आत्मा निजस्वभावभाव, त्रिकाल स्वभाव शुद्धभाव की अपेक्षा से **कर्मजनित नाना प्रकार के भावों से भिन्न ही चैतन्यमात्र वस्तु है।** समझ में आया?

पुद्गलकर्म को कारण, जड़ को बँधने में कारण / निमित्त राग-द्वेष (है) और राग-द्वेष (है) और राग-द्वेष को निमित्त, पुद्गलकर्म (है) दो बातें (हुई)। निमित्त के आधीन हुए कर्मजनित प्रकार के भावों से पृथक् ही चैतन्यमात्र वस्तु है। समझ में आया? क्योंकि राग-द्वेष के भाव, निमित्त के आधीन हुए और राग-द्वेष के भाव से रहित चैतन्य का स्वभाव है। निमित्त-आधीन हुए भाव, स्वभाव में नहीं है। इसलिए यह आत्मा निजस्वभावभाव की, निजस्वभाव शुद्ध आनन्द और ज्ञान (स्वरूप है), जिसमें विकल्प का अवकाश नहीं है, (उसे) ऐसे विकल्परहित स्वीकार करना... आहाहा! देखो न! कैसी शैली! अपेक्षा से कर्मजनित प्रकार या भाव जो विकल्प हैं... उसके जनित कहे थे, ऐसा कहते हैं। स्वभावभाव की अपेक्षा से कहा। निमित्त के आधीन हुए, स्वभावभाव की अपेक्षा से पर से किये हुए—ऐसा कहने में आया है। ऐसे **भावों से भिन्न ही चैतन्यमात्र वस्तु है।** अकेला ज्ञानपिण्ड प्रभु चैतन्य का पुंज, वह विकार निमित्त के आधीन हुए विकार, कृत्रिम क्षणिक (होता है), उतने में वह आया नहीं; उससे अत्यन्त भिन्न ज्ञायकस्वभाव पड़ा है। समझ में आया?

www.vitragvani.com

दिगम्बर आचार्यों की कथन की पद्धति, मूल वस्तु को प्रसिद्ध करने की विधि... उसका अब अर्थकार दृष्टान्त देते हैं।

जिस प्रकार लाल फूल के निमित्त से स्फटिक लाल रंगरूप परिणमन करता है.... वह अपनी स्फटिक की परिणमने की योग्यता से परिणमती है। फूल से परिणमे तो लकड़ी भी लाल रंगपने होनी चाहिए। यह लकड़ियाँ होती हैं न? यह लकड़ी रही, लो! होता है इसमें? स्फटिक होगा तो ऐसा होगा, क्योंकि उसकी अपनी योग्यता से परिणमता है। इसे ऐसे स्फटिक के नीचे रखो तो वहाँ लाल दिखेगा। इसमें नहीं (दिखेगा), क्योंकि वह स्फटिक की अपनी उसरूप परिणमित होने की योग्यता से परिणमित होता है, इसके कारण नहीं। इसके कारण होवे तो इसमें (लकड़ी में) भी दिखना चाहिए। समझ में आया? '**परिणममानस्य**' को यहाँ सिद्ध करके कहते हैं कि अपनी परिणमन करने की योग्यतावाला, वह परिणमता है। स्फटिक में भी ऐसा है।

परन्तु वह लाल रंग स्फटिक का निजभाव नहीं है। जो लाल रंग से परिणमति है, उस क्षण में भी उस स्फटिक के शुद्धस्वभाव का वह रूप नहीं है। **स्फटिक तो स्वच्छतारूप....** स्फटिक तो स्वच्छतारूप। जामनगर में बड़ा स्फटिक देखा था। डॉक्टर ने बताया था। वह 'प्राणजीवन' डॉक्टर है न? (संवत्) १९९१ में बताया था। यह समयसार की १०० वीं गाथा चलती थी न? वहाँ सम्प्रदाय में। बताया था इतना बड़ा स्फटिक। बड़ा डॉक्टर है। छह लाख की एक सोलिरियम है। जामनगर में एक छह लाख की मशीन है। वह उस समय के छह लाख की मशीन है। वह उस समय के छह लाख की, हों! अभी तो बहुत बढ़ गये। सूरज की मशीन। रोगी को सूर्य की किरणें देते हैं। पूरी मशीन फिराये, बड़ी छह लाख की एक मशीन। मुझे डॉक्टर ने बताया था। वह स्फटिक देखो तो श्वेत, सफेद... सफेद। समझ में आया? यह सूरज का दृष्टान्त दिया। क्या कहते हैं?

जिस प्रकार लाल फूल के निमित्त से स्फटिक.... निमित्त, हों! उपादान स्वयं का। **स्फटिक लाल रंगरूप परिणमन करता है परन्तु वह लाल रंग स्फटिक का निजभाव नहीं है।** निज स्वभाव नहीं। **स्फटिक तो स्वच्छतारूप अपने श्वेतवर्ण से ही विराजमान है।** भाषा देखो! स्फटिक तो अपने स्वच्छतारूप अपने श्वेत वर्ण से टिक

www.vitragvani.com

रहा है। बिराजमान अर्थात् शोभ रहा है। **लाल रंग है, वह तो स्वरूप में प्रवेश किये बिना....** यह जो लाल रंग है, वह स्वरूप में प्रवेश (किये बिना) स्फटिक में अन्दर पड़े बिना **ऊपर-ऊपर ही झलक मात्र दिखाई पड़ता है।** ऊपर-ऊपर झलक... झलक... झलक... लाल-लाल ऊपर झलक दिखती है। झलक समझते हो? क्या कहते हैं? झलक कहते हैं? कपड़ा होवे न? हरा कपड़ा, हरे रंग का हो। फिर सहज ऐसे प्रकाश में रखे तो झलक लगे। कपड़ा होता है न? लाल हो, हरे रंग का हो। बढ़िया साबुन से धोकर साफ किया हो। ऐसे तो सफेद लगे। दरवाजे में प्रकाश में रखे तो झलक लगे। यह कपड़ा पहले हरा था। झलक फेर।

इसी प्रकार सफेद-स्वच्छ भगवान। यहाँ तो आत्मा के साथ मिलायेंगे, हों! वह तो रंग की स्वच्छता है, अपने स्वभाव के रंग की, उसमें लाल रंग की तो झलकमात्र है। **वहाँ रत्न का पारखी जौहरी....** उस रत्न का पारखी, पारखी-परीक्षक जवेरी तो **ऐसे ही जानता है....** एक बात, बस इतनी। वहाँ **रत्न का पारखी जौहरी तो ऐसे ही जानता है....** क्या ऐसा ही जानता है? कि स्फटिक तो स्फटिक स्वच्छ ही है, यह तो ऊपर की झलक है, वह इसमें प्रविष्ट नहीं हुई है। समझ में आया?

और अपारखी (अपरीक्षक) पुरुष को सत्यरूप वह स्फटिकमणि ही रक्तमणिवत्.... वास्तव में ही लालमणि है, वास्तव में ही लालमणि है-ऐसे **लाल रंग के स्वरूप प्रतिभासित होती है।** सत्रूप जो लालमणि की तरह लालरंगरूप ही प्रतिभासित होती है। समझ में आया? अपरीक्षक पुरुष को सत्यरूप जो लालमणि की तरह लालरंगरूप लाल (भासित होती है)। लालमणि की तरह पूरा लालरूप ही लगता है। है तो वह (स्फटिक) स्वच्छ, परन्तु पूरी लालमणि हो, ऐसा इसे भासित होता है। अपरीक्षक है। यह दृष्टान्त (हुआ)।

उसी प्रकार कर्म निमित्त से आत्मा रागादिरूप परिणमन करता है,.... कर्म के संग से, स्वच्छ ऐसा भगवान आत्मा है, तथापि कर्म के लक्ष्य से, आश्रय से पुण्य-पाप के विकारीभावरूप होता है। वे रागादि, आत्मा के निजभाव नहीं हैं। आहाहा! शुभ-अशुभराग, शुभ-अशुभ-विकल्प, वह आत्मा का भाव नहीं है, त्रिकाली-भाव नहीं है,

www.vitragvani.com

स्वभावभाव नहीं है। **आत्मा तो अपने स्वच्छतारूप चैतन्यगुण में बिराजमान है। आत्मा तो अपने स्वच्छतारूप....** देखो! स्वच्छतारूप चैतन्यगुण, स्वच्छतारूप चैतन्यगुण, ज्ञायक गुण—इसमें आत्मा बिराजमान है। आत्मा तो चैतन्यगुण में बिराजमान है।

रागादि है, वह तो स्वरूप में प्रवेश किये बिना.... पहले का लाल रंग प्रविष्ट हुए बिना। इसी प्रकार पुण्य और पाप के भाव अन्तर शुद्धस्वरूप में प्रविष्ठ हुए बिना **ऊपर ही ऊपर झलक मात्र दिखाई देता है।** आहाहा! शुभ-अशुभभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध आदि शुभाशुभराग, वे चैतन्य के शुद्धस्वरूप में प्रविष्ठ नहीं। वे तो ऊपर-ऊपर झलकमात्र विकार दिखता है। इसके दृष्टान्त से तो बात की है, अब इसमें न समझ में आये, ऐसी कोई बात नहीं है। आहाहा!

ऊपर ही ऊपर झलक मात्र दिखाई देता है। वहाँ.... अब ऊपर-ऊपर झलक मात्र दिखती है। चैतन्यस्वभाव बिराजमान शुद्ध है। अब **वहाँ ज्ञानी स्वरूप का परीक्षक तो....** धर्मी-स्वरूप के परीक्षक तो **ऐसे ही जानता है।** ऐसा ही जानते हैं अर्थात् शुद्ध स्वरूप स्वच्छता से बिराजमान भगवान है। विकारभाव तो ऊपर झलकमात्र है। इसके शुद्धस्वरूप में उसकी एकता हुई नहीं है। समझ में आया? रागादि निजभाव नहीं, चैतन्यगुण बिराजमान है। वह रागादि, स्वरूप में प्रविष्ठ हुए बिना ऊपर झलकमात्र है—ऐसा ज्ञानी-स्वरूप के परीक्षक ऐसा जानते हैं। ऊपर जो कहा—ऐसा ही जानते हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी शुभराग से आत्मा का कल्याण होता है, शुभराग से समकित होता है, क्षायिक समकित... नहीं तो क्षायिक समकित आगे कहाँ जायेगा? क्षपकश्रेणी चढ़ेगा... क्योंकि नीचे शुद्ध-उपयोग नहीं (-ऐसा अज्ञानी कहते हैं।) आहा...! यहाँ तो शुभराग झलकमात्र पर की है, ज्ञानी शुद्ध चैतन्यस्वभाव से बिराजमान, उसे चैतन्य जानते हैं। इस राग को तो पर जानते हैं, उसमें (स्वभाव में) एकमेक नहीं जानते। आहाहा! समझ में आया?

किन्तु अपरीक्षक (अपारखी) जीवों को.... अज्ञानी जीवों को **सत्यरूप आत्मा....** देखो! **सत्यरूप आत्मा पुद्गलकर्मवत् रागादिस्वरूप ही प्रतिभासित होता है।** पुद्गलकर्म की तरह रागादि-स्वरूप ही प्रतिभासता है। अज्ञानी को तो रागस्वरूप

www.vitragvani.com

ही आत्मा भासता है। **सत्य स्वरूप आत्मा पुद्गलकर्मवत् रागादि....** वे तो पुद्गलकर्म जैसे हैं, वैसा आत्मा इसे भासता है। **पुद्गलकर्मवत् रागादिस्वरूप ही प्रतिभासित होता है।** पुद्गलकर्म है न? ऐसा ही मानो आत्मा है। राग-द्वेषवाला आत्मा—ऐसा अज्ञानी को भासित होता है। कहो, समझ में आया?

लालमणि कहा था न? दृष्टान्त में तो लालमणि ली थी न? दूसरी लालमणि ली थी न? वह तो स्वच्छ ही थी परन्तु दूसरी लालमणि ली थी न? लालमणि की भाँति—ऐसा कहा था न इसमें? ऐसे लालमणि की तरह, यह पुद्गलकर्म की तरह। समझ में आया? पुद्गलकर्म का ही यह कार्य—ऐसा न मानकर, उस पुद्गलकर्मस्वरूप ही आत्मा है, ऐसा ही वह मानता है। पुद्गलकर्म से हुआ विकार, उसीस्वरूप मैं हूँ, उसीस्वरूप मैं हूँ। समझ में आया? इसलिए अब प्रश्न हुआ।

स्फटिक में लाल रंग, वह पर के निमित्त की उपाधि क्षणिक ऊपर झलकती है; स्फटिक तो स्वच्छतामात्र बिराजमान शोभित भिन्न है। अपरीक्षक को तो उस लाल-रंग स्वरूप-लालमणि रंगस्वरूप पूरा स्फटिक भासित होता है। परीक्षक को स्वच्छता से भिन्न लाल रंग है—ऐसा भिन्न भासित होता है।

इसी प्रकार अज्ञानी को आत्मा का स्वच्छभाव भासित न होकर, कर्म के निमित्त से होनेवाला उपाधिभाव, उस कर्मरूप ही आत्मा को भासित होता है। उस कर्मरूप अर्थात् विकाररूप ही आत्मा भासित होता है। परीक्षक को, उसकी ऊपर झलक रहती है; स्वरूप में प्रविष्ठ नहीं, शुद्ध स्वच्छमान चैतन्य में वह राग स्पर्शित ही नहीं—ऐसा परीक्षक अर्थात् ज्ञानी को भिन्न भासित होता है।

तब यह प्रश्न हुआ कि महाराज! **आपने ही तो रागादिभावों को जीवकृत कहा था; अब यहाँ उन्हें कर्मकृत कैसे कहते हो?** पहले तुमने १२ वीं (गाथा में) जीवकृत कहा; और यहाँ कर्मकृत कहा। समझ में आया? आया था न? १२ वीं में जीवकृत कहा और १४ गाथा में कर्मकृत कहा। अभी एक गाथा गयी (है), वहाँ क्या हुआ तुम्हारा यह? इसकी व्याख्या करेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)